. अनेक दान के महत्त्व तथा उत्तम गति पाने के लिए

पहले कभी गौतम नाम के एक ब्राह्मण थे। वे बड़े कोमल स्वभाव के थे। वे मनोविजयी तथा जितेन्द्रिय थे। वे जहां रहते थे, विशाल वन था। उन्हें एक हाथी नर-बच्चा मिला जो माता-पिता विहीन था। गौतम ने दया कर उसे पाला। कुछ दिन में हाथी-बच्चा जवान और बलवान हो गया। एक दिन इंद्र ने धृतराष्ट्र के रूप में आकर उस हाथी को अपने अधीन कर लिया। गौतम ने कहा–राजन! तुम मेरे हाथी को न ले जाओ। मैंने काफी कष्ट उठाकर इसे पाला है। सात पग साथ चलने पर सत्पुरुष से मित्रता हो जाती है। इस कारण मैं और तुम मित्र हैं। यदि तुम मेरा हाथी ले जाओगे तो तुम्हें मित्रद्रोह का पाप लगेगा। तुम ऐसा पाप मत करो। राजन! यह मुझे समिधा और जल लाकर देता है। जब मेरे आश्रम पर कोई नहीं रहता, तब यही आश्रम की रक्षा करता है। मैं चिल्ला-चिल्लाकर कहता हूं कि तुम मेरे हाथी को न ले जाओ।

धृतराष्ट्र ने कहा–महर्षे! मैं आपको एक हजार गौएं, दो सौ दासियां, पांच सौ स्वर्णमुद्राएं तथा अन्य भी नाना प्रकार के धन दूंगा। ब्राह्मण को हाथी की क्या आवश्यकता है?

गौतम–राजन! गौएं, दासियां, स्वर्णमुद्राएं, नाना प्रकार के रत्न और धन आपके ही पास रहें। ब्राह्मण के यहां धन की क्या आवश्यकता?

धृतराष्ट्र–गौतम! ब्राह्मण को हाथी से कोई प्रयोजन नहीं होता। हाथियों के समूह तो राजा के यहां होते हैं। हाथी मेरा वाहन है, अतएव मैं इस हाथी को ले जाऊंगा। इसे ले जाने से मुझे कोई अधर्म नहीं होगा। आप इस हाथी से अपना मन हटा लें।

गौतम–राजन! जहां जाकर पुण्यात्मा आनंद भोगता है और पापी दुख में डूब जाता है, उस यमलोक में मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो निकम्मा, नास्तिक, श्रद्धाहीन, पापात्मा और विषयासक्त हैं, वे यमलोक में जाते हैं, राजा धृतराष्ट्र को वहां नहीं जाना है।

गौतम–जहां कोई झूठ नहीं बोलता, जहां सदा सत्य बोला जाता है, जहां निर्बल मनुष्य बलवान के अन्याय का न्याय पाता है। मनुष्यों को संयमित रखनेवाली यमराज की वह पुरी 'संयमनी' नाम से प्रसिद्ध है। वहां चलकर मैं अपना हाथी तुमसे वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो अहंकारी बड़ी बहिन, माता, पिता और गुरु से शत्रु के समान बरताव करते हैं, उन्हीं के लिए यह यमलोक है। अतएव धृतराष्ट्र वहां जाने वाला नहीं है।

गौतम–मनोहर मंदाकिनी नदी राजा कुबेर के नगर में विराज रही है, जहां नाग, गंधर्व, यक्ष तथा अप्सराएं उस मंदाकिनी का सेवन करते हैं, वहां जाकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो सदैव अतिथि की सेवा करते हैं, जो ज्ञानियों का आदर करते हैं और जो अपने आश्रित लोगों को खिलाकर खाते हैं, वे ही उस मंदाकिनी नदी की शोभा बढ़ाते हैं। मैं वहां भी नहीं जाऊंगा।

गौतम–मेरु पर्वत के सामने रमणीय वन है। वहां सुगंधित शोभनीय फूलों की बहार है और किन्नरियों के मधुर गीत गूंजते रहते हैं, जहां विशाल जंबू वृक्ष शोभा पाता है, वहां पहुंचकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो ज्ञानी हैं, कोमल स्वभाव के हैं, सत्यशील, शास्त्रज्ञ, सभी जीवों को प्यार देने वाले हैं, शास्त्रों का अध्ययन करते हैं और ज्ञानियों का सत्कार करते हैं, ऐसे लोगों के लिए वह लोक है। राजा धृतराष्ट्र को वहां भी नहीं जाना है। आपको जो–जो दिव्य स्थान का पता हो, उसका वर्णन करते जाइए। मैं यहां से जाने के लिए आतुर हूं। मुझे जाने की जल्दी है।

गौतम–सुंदर–सुगंधित फूलों से सुशोभित, किन्नर राजाओं से सुरक्षित, नारद, गंधर्व और अप्सराओं को प्रिय जो नंदनवन है, वहां जाकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो नाचने–गाने में कुशल है, कभी किसी से कुछ नहीं मांगते तथा सदैव सज्जनों के साथ विचरण करते हैं, उनके लिए वह नंदनवन है। मुझे वहां जाने की जरूरत नहीं है।

गौतम–जहां सुंदर–सुंदर उत्तर कुरु के निवासी निवास करते हैं, देवताओं के साथ आनंद भोगते हैं, जहां दिव्य मानव निवास करते हैं, जहां इंद्र सबकी सारी कामनाएं पूरी करते हैं, जहां स्त्रियां स्वतंत्र कामाचार में लगी रहती हैं और जहां स्त्रियों तथा पुरुषों में परस्पर ईर्ष्या का अभाव है, वहां जाकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो मनुष्य सभी प्राणियों से निष्काम रहता है, किसी प्राणी को कष्ट नहीं देता है, किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता है, जो सब प्राणियों को अपने आत्मा के समान मानता है; जो कामना, ममता तथा आसक्ति से रहित है, जो लाभ–हानि, निंदा–प्रशंसा होने पर उनमें समान भाव रखता है, ऐसे लोगों के लिए उत्तर कुरु नामक लोक है। पर मैं वहां भी नहीं जाना चाहता।

गौतम–राजन! उसके अलावा बहुत–से सनातन लोक हैं जहां अच्छी सुगंधी फैली रहती है। वहां रजोगुण तथा शोक का सर्वथा अभाव है। वहां पहुंचकर मैं तुमसे हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–महर्षि! जो सदैव दान तो करते हैं, किंतु दान नहीं लेते, जो योग्य पात्र को कुछ भी देने के लिए उत्सुक रहते हैं, जो अतिथि–सत्कार करते तथा सबसे कोमलभाव रखते हैं, जो क्षमाशील हैं और दूसरों की चर्चा नहीं करते और जो यथाशक्ति सबके पोषक हैं, ऐसे लोग ही सोमलोक में जाते हैं। धृतराष्ट्र को वहां भी नहीं जाना है।

गौतम–राजन! सोमलोक से भी ऊपर कितने लोक दिव्य हैं, जो रजोगुण, तमोगुण से रहित शोक से परे हैं। वहां पहुंचकर मैं तुमसे हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो स्वाध्यायशील, सेवापरायण, तपस्वी, अच्छे व्रत में रहने वाले, सत्यप्रतिज्ञ, गुरु के प्रतिकूल भाषण न करने वाले, सदा उद्योगशील, बिना कहे गुरु के अनुकूल काम करने वाले, पवित्रभाव वाले, मितभाषी, सत्यनिष्ठ और वेदों के विद्वान महात्मा हैं, उन्हीं के लिए सूर्यलोक है। धृतराष्ट्र वहां भी नहीं जाना चाहता है।

गौतम–उनके अलावा बहुत–से ज्योतित लोक हैं जहां अच्छी सुगंधी फैली रहती है। वहां रजोगुण और शोक नहीं है। वह वरुणलोक है। वहां पहुंचकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो ब्राह्मण यज्ञ–याग खूब करते हैं, वे वरुणलोक में जाते हैं, परंतु मैं वहां भी नहीं जाना चाहता।

गौतम–इंद्रलोक रजोगुण से और शोक से रहित है। उसका पाना बड़ा कठिन है। वहीं पहुंचकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो वेदाध्ययन करता है, यज्ञ में लगा रहता है और प्रमाद नहीं करता, ऐसे लोग इंद्रलोक में जाते हैं। धृतराष्ट्र उससे भी उत्तम लोक में जायगा। अतएव मैं इंद्रलोक में भी नहीं जाना चाहता।

गौतम–स्वर्ग के शिखर पर प्रजापति लोक है, जो संपन्न और शोक–रहित है। सब कोई उसे पाना चाहते हैं। मैं वहां जाकर तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो धर्मात्मा राजा राजसूय यज्ञ करते हैं, प्रजा की रक्षा करते हैं तथा अश्वमेध यज्ञ करते हैं, वे प्रजापति लोक में जाते हैं। धृतराष्ट्र वहां भी नहीं जायगा।

गौतम–गोलोक प्रजापति लोक से भी ऊपर है। वह सुगंधिपूर्ण है, रजोगुण–रहित है और शोक–शून्य है; मैं वहां जाकर तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–जो निरंतर गौ दान करता है, आजीवन ब्रह्मचारी रहता है,

वेदाध्ययन करता है और सदैव तीर्थ–यात्रा करता है, वह गोलोक में जाता है। धृतराष्ट्र उस लोक में भी नहीं मिलेगा।

गौतम–जहां सरदी–गरमी, भूख–प्यास, ग्लानि, दुख–सुख, द्वेष, प्रेम, मित्र–शत्रु, पाप–पुण्य, जरा–मृत्यु नहीं हैं तथा जो क्रियाहीन, प्रज्ञा तथा सत्व से व्यवस्थित है, उस ब्रह्मलोक में जाकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

धृतराष्ट्र–मुने! जो सब प्रकार आसक्ति–रहित है, जो स्ववश मन वाला, अध्यात्मनिष्ठ तथा योगरूढ़ है, ऐसे सात्विक मनुष्य ही ब्रह्मलोक में जाते हैं, वहां तुम धृतराष्ट्र को नहीं देखोगे।

गौतम–जहां सामगायन होता है, जहां निरंतर यज्ञ होता है तथा जहां सोमपान करके अच्छे घोड़ों पर बैठकर लोग भ्रमण करते हैं, वहां जाकर मैं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

मैं जानता हूं कि आप राजा धृतराष्ट्र नहीं, इंद्र हैं। आप सारे संसार का निरीक्षण करते हुए घूम रहे हैं। मैंने मन के उद्वेग में पड़कर वाणी द्वारा आपका अपराध तो नहीं कर डाला है?

इंद्र–मैं इंद्र हूं। मैं आपके हाथी का अपहरण कर निंदित हो गया हूं। मैं आपके सामने नतमस्तक हूं। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूं?

गौतम–यह सफेद हाथी जो केवल दस वर्ष का बच्चा है। इसे आप मुझे लौटा दें।

इंद्र–आपका पुत्र स्वरूप यह हाथी आपकी तरफ ही देखता है और आपकी ओर आ रहा है तथा आपके चरण सूंघ रहा है। आप अपना हाथी ग्रहण कीजिए।

गौतम–इंद्र! मैं आपका कल्याण चाहता हूं। आप भी मेरी कल्याण–कामना कीजिए। मैं अपना हाथी ग्रहण करता हूं।

इंद्र–आप सत्यवादी वेदज्ञ हैं। आप सदा के लिए कल्याणमय लोक के अधिकारी हैं।

इंद्र हाथी सहित गौतम को आगे करके स्वर्गलोक को चले गये।

जो मनुष्य उपर्युक्त प्रसंग को जितेन्द्रिय होकर सुनेगा या पढ़ेगा, वह उस दुर्गम स्वर्गलोक में चला जायगा (अध्याय –)।

मीमांसा

मनुष्य इस मृत्युलोक में दुखी हैं; अतएव वे चाहते हैं कि हम ऐसे लोकों में जाकर रहें जहां कोई दुख न हो, अपितु केवल सुख–सुख हो। लोगों को विश्वास

था कि आकाश में चमकते तारे ऐसे लोक होंगे, जहां केवल सुख होगा और दुख का नाम भी नहीं होगा। वहां पहुंचने के लिए अच्छा जीवन बिताना चाहिए और अच्छा कर्म करना चाहिए।

वस्तुत: कोई ऐसा लोक नहीं है जहां जाकर दुखहीन होकर रहा जा सके। दुखहीन होकर यहीं इसी संसार में रहा जा सकता है। जब मन के राग-द्वेष तथा तृष्णा-कामना का त्यागकर दिया जाता है तब वह दिव्य स्थिति मिल जाती है।

इसी बात को बताने के लिए गौतम और इंद्र की वार्ता का रूपक कल्पित किया गया है और हाथी को आधार बनाया गया है। कल्पनाशील पंडित का काव्य भी बहुत सुंदर है। पूरा प्रकरण तिरसठ ( ) श्लोकों का है। एक श्लोक की बानगी लें–

प्राजापत्या: सन्ति लोका महान्तो
नाकस्य पृष्ठे पुष्कला वीतशोका:।
मनीषिता: सर्वलोकोद्‌भवानां
तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये

(अनुशासन पर्व, अध्याय , श्लोक)

अर्थात स्वर्ग के शिखर पर महान प्रजापति लोक हैं, जो पूर्णतया शोक-रहित हैं। संसार के सब प्राणी उन्हें पाना चाहते हैं। मैं वहीं तुमसे अपना हाथी वापस लूंगा।

वस्तुत: इस धरती को छोड़कर कोई लोक नहीं है जहां शोकरहित स्थिति मिल सके। वह स्थिति मिलती है आत्मलीनता में और आत्मलीन स्थिति होती है पूर्णतया निष्काम-निर्मान दशा में।

. अनशन के विषय में अतिशयोक्ति तथा सदाचार का महत्त्व

एक सौ तीन ( )वें अध्याय में अनशन-व्रत का महत्त्व बताने के लिए ब्रह्मा और भगीरथ के संवाद का रूपक गढ़ा गया है।

बात ऐसी हुई कि भगीरथ ऋषिलोक, गोलोक तथा देवलोक को लांघकर ब्रह्मलोक में जा पहुंचे। ब्रह्मा जी भगीरथ को अचानक आया हुआ देखकर अचकचा गये, और उन्होंने तुरंत पूछ लिया–राजन! यहां आना तो बहुत कठिन है। तुम कैसे आ गये?

भगीरथ ने बड़े लंबे-चौड़े व्याख्यान में बताया है कि मैं ब्रह्मचर्य, अगणित यज्ञ, लाखों गोदान, अतुल स्वर्णदान आदि के बल पर यहां नहीं आया हूं, किंतु अनशन-व्रत से, अर्थात खाना-पीना छोड़कर तथा देह को सुखाकर यहां आया हूं।

मीमांसा

हर पुण्य-कर्म की महिमा बताना है, तो अनशन की महिमा बताने के लिए पंडित-लेखक ने पैंतालीस श्लोकों का अध्याय गढ़ डाला और उसने बताया कि अनशन करने से उच्चतम ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

वस्तुतः प्रशंसा की अतिशयोक्ति में लेखक भाड़ बन जाता है और वह तिल को ताड़ बना देता है। आवश्यकता अनशन की नहीं है, संयमित जीवन की है। ब्रह्मलोक आत्मस्थिति है और वह मिलता है संयमित होकर अंतर्मुख होने से।

एक सौ चार ( )वें अध्याय में सदाचार का वर्णन है। उसमें कुछ युगबाह्य तथा बहुत शिथिल है। जो उसके मुख्य बिंदु सर्वजन हितकारी हैं, उन्हें यहां दिया जा रहा है–

कल्याण चाहने वाले को सदाचार का पालन करना चाहिए। जिसके जीवन में पाप है, वह भी सदाचार का पालन करने लगे तो पाप से ऊपर उठ जायगा। "सदाचार ही धर्म का लक्षण है और सच्चरित्रता ही संत लक्षण है। साधु पुरुष एवं श्रेष्ठ लोग जैसा आचरण करते हैं, वही सदाचार का लक्षण है।" जो धर्म का आचरण करता है और लोककल्याण में लगा रहता है, उसको बिना देखे लोग उससे प्रेम करने लगते हैं। जो नास्तिक, आलसी, गुरु तथा शास्त्र के निर्देश का उल्लंघन करने वाला, धर्मशून्य तथा दुराचारी है, वह अपने को क्षीण करता है। शील हानि, धर्म-मर्यादा को तोड़नेवाला, निरंतर विषयलंपट अपना विनाश करता है। और गुण हों या न हों, जिसमें सदाचार और श्रद्धा है तथा जो दूसरों के दोष पर अपनी दृष्टि नहीं रखता, वह कल्याण का भागी होता है। जो क्रोध-रहित, सत्यवादी, किसी प्राणी की हिंसा न करने वाला, पर-दोष-दर्शन-रहित, कपटशून्य तथा सरल है, वह कल्याण का भागी है।

. **आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः।**
साधूनां च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम् ,

प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में जगकर जो धर्म तथा अर्थ का चिंतन करता है और आत्मशोधन करता है, वह कल्याण का भागी होता है। सुबह तथा शाम की संध्या अवश्य करना चाहिए। "जो द्विज प्रातः और सायंकाल की संध्योपासना नहीं करते, धर्मवान राजा को चाहिए कि उनको पकड़कर उनसे शूद्र का काम करवाये।" मनुष्य का महापतन है परस्त्रीगमन। दूसरे के पहने हुए कपड़े तथा जूते न पहने। पैर से पैर न दबावे। कटु बोलकर दूसरों के दिल को न दुखावे, क्रूरतापूर्ण बात न बोले, दूसरों को नीचा न दिखावे। जो दूसरों को उद्वेग पहुंचाती हो, ऐसी कड़वी बात न बोले। वचन-बाण से बिंधा मनुष्य रात-दिन पीड़ित होता है। अतएव दूसरों के दिल दुखाने वाले वचन कभी न कहे। कर्णि, नालीक तथा नाराच शरीर में गड़े हों, तो इन्हें चिकित्सक निकाल देते हैं, किंतु वचन-बाण निकालना असंभव है, क्योंकि वह हृदय-भीतर चुभा होता है। उसे तो स्वयं विवेक से निकालना चाहिए। विकलांग, अधिकांग, विद्याहीन, निंदित, कुरूप, निर्धन और बलहीन मनुष्य पर व्यंग्य एवं आक्षेप न करे। किसी पर क्रोध न करे, चोट न करे। पुत्र और शिष्य को शिक्षा देने के लिए डांटना ठीक है।

ज्ञानी की निंदा न करे। घर-घर घूम-घूमकर नक्षत्र और पक्ष की तिथि न बताया करे। उत्तम पकवान केवल अपने लिए न बनावे, दूसरे की सेवा में बनावे। प्रातःकाल उठकर माता-पिता, गुरु तथा बड़ों का नमस्कार करे। टूटी तथा ढीली खाट पर न सोवे। अंधेरे में पड़े हुए बिस्तर पर न सोवे। दूसरे के साथ शय्या पर न सोवे। बिस्तर पर तिरछा होकर नहीं सोना चाहिए अपितु सदा सीधा सोना चाहिए। भ्रष्ट मनुष्य चाहे जितना अपनी शुद्धता की शपथ खाय, उसका साथ न करे। आसन को पैर से खींचकर न बैठे। नग्न होकर स्नान न करे। बोये हुए खेत में, गांव के निकट तथा पानी में कभी मल-मूत्र का त्याग न करे। देवमंदिर, गायों के पास, देवसंबंधी वृक्ष, निवास के निकट तथा खड़ी फसल में टट्टी-पेशाब न करे। भूसी, भस्म, बाल तथा मुरदे की खोपड़ी पर न बैठे। चलते-फिरते भोजन न करे, बैठकर भोजन करे। खड़े होकर पेशाब न करे। राख में और गोशाला में पेशाब न करे।

बड़े मनुष्य के आने पर जिसके पास वे आते हैं उसके प्राण ऊपर उठने लगते हैं, अतएव उसे चाहिए कि वह उनका उठकर प्रणाम तथा स्वागत करे।

. ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम्।
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ,

इससे उसके प्राण यथास्थान आ जाते हैं। अतएव बड़ों के आने पर उनका उठकर अभिवादन और स्वागत करे, सेवा करे और उनके जाने पर उनके पीछे कुछ दूर चलकर उन्हें विदा करे। गुरु के साथ कभी हठ नहीं करना चाहिए। यदि वे अप्रसन्न हो जायं, तो उन्हें सम्मान देकर प्रसन्न करे। गुरु प्रतिकूल बरताव करता हो, तो भी उसके साथ अच्छा ही बरताव करे। गुरुनिंदा मनुष्य को नष्ट कर देती है।

किसी के साथ एक बरतन में भोजन न करे। जिसका सार निकाल लिया गया हो, उस अन्न का भोजन न करे। यदि कोई तरसती हुई दृष्टि से भोजन देखता है, तो उसे देकर स्वयं भोजन करे। निषिद्ध भोजन छिपकर भी न करे। रात में दही और सत्तू न खाये। केवल सुबह और शाम को भोजन करे। इसके बीच में कुछ न खाये। खड़ा होकर तथा बातचीत करते हुए भोजन कभी नहीं करना चाहिए। अतिथि को भोजन देकर खाना चाहिए। एक पंक्ति में बैठकर सबको समान भोजन करना चाहिए। जो अपने लोगों को भोजन न देकर केवल स्वयं खाता है, वह हलाहल विष खाता है। प्राप्त भोजन की निंदा न करे। भोजन के अंत में दही नहीं पीना चाहिए।

अपनी भलाई चाहने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरे की निंदा न करे, अप्रिय वचन न बोले और अपनी क्रिया से किसी को उत्तेजित न करे। आचार-भ्रष्ट मनुष्य की संगत, वार्ता तथा संपर्क न करे। बूढ़े कुटुंबी, मित्र तथा पवित्रात्मा यदि निर्धन हों तो यथाशक्ति उनका सहयोग करना चाहिए। किसी की बुराई का बखान न करे। परायी स्त्री, राजा की पत्नी और उनकी सखियों से दूर रहे। रात में डटकर भोजन न करे और दूसरे को डटकर भोजन न करावे। बिना बुलाये कभी न जाय। जहां आदर न हो, वहां भी न जाय। माता-पिता तथा गुरुजनों की आज्ञा का पालन करे। सदाचार से ही कल्याण है और उसी से सुकीर्ति होती है। सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं। संपूर्ण शास्त्र सदाचार का ही उपदेश करते हैं। जो इस सदाचारपरक अध्याय का प्रतिदिन श्रवण तथा पठन करेगा वह सदाचार के प्रभाव से शुभ लोक में जायगा (अध्याय -)।

मीमांसा

इस अध्याय में सदाचार का फल लंबी आयु बताया गया है और दुराचार का फल आयु की क्षीणता बताया गया है। खास बात है, सदाचार से कल्याण है, शांति है और दुराचार से पतन। आयु छोटी-बड़ी होने का महत्त्व नहीं है,

अपितु सदाचार का महत्त्व है। जो सदाचार के विषय में पढ़ेगा, सुनेगा तथा उसका आचरण करेगा, उसकी शुभगति आज ही है, आगे भी है।

. छोटे-बड़े भाई तथा गुरु-शिष्य आदि सबके लिए अमृत उपदेश

युधिष्ठिर ने पूछा–दादाजी! बड़े तथा छोटे भाई का पारस्परिक बरताव कैसा होना चाहिए?

भीष्म ने कहा–बेटा! तुम अपने भाइयों में बड़े हो, अतएव तुम अपने अनुरूप व्यवहार करो। जैसे गुरु अपने शिष्य के साथ गौरवपूर्ण व्यवहार करता है वैसे तुम्हें भी अपने भाइयों के साथ करना चाहिए। यदि गुरु तथा बड़े भाई का विचार शुद्ध नहीं है, तो शिष्य और छोटे भाई उनकी आज्ञा में नहीं रह सकते। बड़ों के दीर्घदर्शी होने पर छोटे भी दीर्घदर्शी होते हैं।

गुरु और बड़े भाई को समयानुकूल अंध, जड़ और ज्ञानी बनना चाहिए। अर्थात शिष्य तथा छोटे भाई से कोई गलती हो जाय, तो उसे देखते हुए न देखे। जानकर अनजान बना रहे और उनसे ऐसी बात तथा बरताव करे कि जिससे उनकी गलती करने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाय। यदि गुरु या बड़ा भाई शिष्य तथा छोटे भाई को सबके सामने दंड देता है तो इससे शिष्य एवं छोटे भाई का हृदय टूट जाता है। अतएव वे उस दुर्व्यवहार का प्रचार कर देते हैं। इससे उनके ऐश्वर्य से जलने वाले शत्रु प्रसन्न होते हैं और उनसे मिलकर उनमें फूट डाल देते हैं। बड़े लोग अपनी अच्छी नीति से कुल-परंपरा की उन्नति करते हैं, परंतु यदि कुनीति का आश्रय लेते हैं तो कुल-परंपरा का पतन करते हैं। बड़ों की कुनीति कुल-परंपरा का विनाश करती है।

यदि बड़ा भाई छोटे भाइयों के साथ कुटिलता का बरताव करता है, तो वह न बड़ा कहलाने योग्य है और न ज्येष्ठांश पाने योग्य है। उसे तो राजा द्वारा दंड मिलना चाहिए। जिस कुल में पापी मनुष्य जन्मता है, उसका पतन होता है। यदि छोटा भाई पाप-कर्म में लगा है तो वह पिता के धन में भाग पाने का अधिकारी नहीं है। बड़ा भाई यदि छोटे भाइयों का अधिकार छीनता है, तो वह पाप का भागी है। उसे छोटे भाइयों को उनका भाग देकर स्वयं अपना भाग लेना चाहिए।

यदि बड़ा भाई परदेश में जाकर अपने जांघ के बल पर धन कमाता है, तो वह उसकी अपनी कमाई है; अतएव यदि वह उसमें से अन्य भाइयों को न देना

चाहे तो कोई अनुचित नहीं है। यदि सब भाई साथ-साथ परिश्रम से धन कमाये हों तो सबको बराबर भाग मिलना चाहिए, कम-अधिक नहीं।

बड़े भाई ने अच्छाई की है या बुराई, छोटे भाइयों द्वारा उसका अपमान नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार छोटे भाई या स्त्री से कोई गलती हो जाय, तो बड़े को उनसे ऐसा बरताव करना चाहिए कि भलाई के रास्ते पर आ सकें। धर्म ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। दस आचार्यों से बड़ा उपाध्याय है। दस उपाध्यायों से बड़ा पिता है। दस पिताओं से बढ़कर माता है। संपूर्ण पृथ्वी से माता बड़ी है। अतएव माता सर्वोच्च है। पिता के मर जाने पर बड़ा भाई को पिता मानना चाहिए। बड़े भाई का कर्तव्य है कि वह छोटे भाइयों को जीविका का साधन दे, उनका पालन-पोषण करे। छोटे भाइयों का कर्तव्य है कि वे बड़े भाई को आदर दें और उनके अनुशासन में रहें। इतना ही नहीं, बड़े भाई को पिता मानकर उनके आश्रय में जीवन व्यतीत करें। बड़ी बहन माता तुल्य है, तथा भाभी और बचपन में दूध पिलाने वाली धाय माता तुल्य है।

"हे भारत! माता-पिता तो केवल शरीर पैदा करते हैं, परंतु गुरु के उपदेश से जो नवीन आध्यात्मिक जीवन प्राप्त होता है, वह शाश्वत, अजर और अमर है।" यथा–

शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत।
आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या साजरामरा

(अनुशासन पर्व, अध्याय , श्लोक -)

मीमांसा

उपर्युक्त छोटे अध्याय का विषय सबके व्यवहार के लिए अमृत उपदेश है। चर्चा छोटे भाई, बड़े भाई तथा गुरु-शिष्य की है, परंतु इसके आधार से सबके लिए सीख है।

. उपवास तथा व्रत के फल की अतिशयोक्ति तथा मानस-तीर्थ की सत्यता

एक सौ छह ( )वें अध्याय में यह बताया गया है कि किस मास, पक्ष तथा तिथि में व्रत तथा उपवास से क्या फल होता है। जैसे जो मनुष्य चार दिनों पर भोजन करता हुआ एक वर्ष व्यतीत करता है, उसे गवामय यज्ञ का फल मिलता है, और इसके फल में वह मरने के बाद हंस और सारसों से जुते हुए

विमान पर चढ़कर स्वर्ग जाता है और पचास हजार वर्ष तक सुख-भोगता है। जो एक-एक पक्ष बीतने पर भोजन करता है और इसी तरह एक वर्ष बिता देता है, उसको छह मास अनशन करने का फल मिलता है। वह साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है। उसे स्वर्ग में वीणा, वल्लकी, वेणु आदि बाजे बजाकर सोते से जगाया जाता है। इससे अधिक सनकी बातें आगे-आगे बतायी गयी हैं।

एक सौ सात ( )वें अध्याय में बताया गया है कि दरिद्र मनुष्य यज्ञ-याग नहीं कर सकता। अतएव वह उपवास द्वारा उत्तमोत्तम स्वर्ग को प्राप्त करता है और वहां दिव्यभोग भोगता है। इसके फल में जो स्वर्ग का वर्णन है, उसमें केवल एक लें-जिस विमान पर वह विराजता है वह आकाश के समान विशाल होता है। वह सूर्य और वैदूर्यमणि के समान दिखायी देता है। उसका पिछला भाग चंद्रमा के समान, वाम भाग मेघ के समान, दाहिना भाग लाल, निचला भाग नील, ऊपरी भाग अनेक रंगों का होता है। उसमें वह अनेक नर-नारियों से सम्मानित होता है। मेघ जंबूद्वीप में जितने जल बिंदुओं की वर्षा करते हैं, उतने हजार वर्षों तक उसका ब्रह्मलोक में निवास होता है।

यह अध्याय एक सौ चौवालीस ( ) श्लोकों का है। इसमें और अधिक कल्पनाशील मनोराज्य का चित्र खींचा गया है।

एक सौ आठ ( )वें अध्याय में मानस-तीर्थ पर जोर दिया गया है। अंत में छह श्लोकों में पार्थिव तीर्थ का महत्त्व बताया गया है। मानस-तीर्थ का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि धैर्य रूपी गहरे सरोवर में अगाध, निर्मल, शुद्ध सत्य का जल भरा है। मनुष्य को चाहिए कि वह शाश्वत सत्य का सहारा लेकर उसमें स्नान करे। मानस-तीर्थ में जो स्नान कर लेता है उसके लक्षण ऐसे हैं-वह न कोई कामना रखता है, न किसी से कुछ मांगता है। उसमें सरलता, कोमलता, सत्य, अहिंसा, दयालुता, इंद्रिय-संयम और मन की शांति रहती है। जिनमें ममता-अहंकार, राग-द्वेष तथा परिग्रह का अभाव है और जो अनासक्त होकर जीवन-निर्वाह लेते हैं, वे भिक्षु (संन्यासी) तीर्थ रूप हैं। जिनके मन में थोड़ा भी अहंकार नहीं है, वे तत्त्वज्ञानी पुरुष उच्चतम तीर्थ हैं। जिनके तीनों गुण धुल गये हैं, जो अपने कर्तव्य का ही केवल अनुसंधान करते हैं, स्वर्ग का त्याग रखते हैं और जिनके मन, वाणी तथा कर्म पूर्ण शुद्ध हैं, वे सत्पुरुष स्वयं परमतीर्थ हैं। शरीर को पानी से भिगो लेना सच्चा स्नान नहीं है। सच्चा स्नान है मन, वाणी तथा इंद्रियों का पूर्ण संयम। जो सत्पुरुष बीती बातों को मन से उतार

देते हैं, प्राप्त पदार्थों में ममता-शून्य हैं और जिनके मन में कोई इच्छा नहीं उत्पन्न होती, वे ही परम पवित्र तीर्थ हैं।

इस जगत में प्रज्ञान ही पवित्रता का परम साधन है। इसी प्रकार अकिंचनता तथा मन की प्रसन्नता मनुष्य को पवित्र करती हैं। ज्ञानशुद्धि सर्वश्रेष्ठ है। तत्त्वदर्शी ज्ञानी आत्मज्ञान के जल में सदैव स्नान करते हैं। जिसके जीवन में शौचाचार है, जिसका मन विशुद्ध है और जो सद्गुणों से विभूषित है, वह सदा शुद्ध है (अध्याय -)।

मीमांसा

मानस-तीर्थ यथार्थता की अभिव्यक्ति है।

. व्रत, उपवास, कर्म-फल-भोग आदि पर सत्य तथा भावुकतापूर्ण कथन

एक सौ नव ( )वें अध्याय में प्रत्येक मास की द्वादशी तिथि को उपवास तथा विष्णु की पूजा का वर्णन है। एक सौ दस ( )वें अध्याय में बताया गया है कि यदि मनुष्य रूप-सौंदर्य और लोकप्रियता चाहता है तो मार्गशीर्ष (अगहन) मास में चंद्रव्रत करे।

एक सौ ग्यारह ( )वें अध्याय में युधिष्ठिर जीवों के कर्मों और उनके जन्म तथा फल आदि का विषय पूछते हैं। इतने में बृहस्पति स्वर्ग से उतरकर वहां आ जाते हैं, अतएव वे ही युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देते हैं। युधिष्ठिर का पहला प्रश्न होता है–माता, पिता, पुत्र, गुरु, संबंधी तथा मित्र में जीव का सच्चा सहायक कौन है?

बृहस्पति कहते हैं–प्राणी अकेला जन्मता है, अकेला ही मरता है, अकेला दुख भोगता है और अकेला ही दुखों से पार जाता है। माता-पिता, गुरु, भाई, जाति संबंधी, मित्र कोई उसका सहायक नहीं होता। लोग मरे हुए का अंत्येष्टि संस्कार करके लौट आते हैं। फिर कभी उसकी तरफ नहीं देखते। जीव का सच्चा सहायक धर्म है। जीव के जैसे कर्म रहते हैं वैसे उसे फल मिलते हैं।

इसके आगे जीव के कर्मों के अनुसार उसको देह मिलने की बात बतायी गयी है। कौन पाप करने से कौन नीच योनि में जाना पड़ता है, इसकी काल्पनिक उड़ानें भरी गयी हैं। यह अध्याय एक सौ तैंतीस ( ) श्लोकों का है।

एक सौ बारह (   )वें अध्याय में बृहस्पति पाप से छूटने का रास्ता बताते हैं। मनुष्य पाप कर्म करना छोड़ दे। जो मनुष्य पाप कर्मों से घृणा करता जाता है उसके पाप कर्म छूटते हैं। यदि मनुष्य अपने पाप ज्ञानियों तथा बड़ों के सामने प्रकट कर दे, तो उसके पाप कर्म छूटते हैं। आगे चलकर अन्नदान की महिमा बतायी गयी है। अन्नदान प्राणदान है।

एक सौ तेरह (   )वें अध्याय में बृहस्पति अहिंसा और धर्म की महिमा बताते हैं। जो मनुष्य सब प्राणियों को अपने समान समझता है और किसी को नहीं मारता, क्रोध को अपने वश में रखता है, जो सब प्राणियों को आत्मवत मानता है, वह परम सुख का भागी होता है। जो बात अपने को अच्छी न लगे, वह दूसरे के लिए भी नहीं करना चाहिए। यही धर्म का लक्षण है। इससे भिन्न बात कामनामूलक है। मांगने पर देने या न देने से, सुख या दुख पहुंचाने तथा प्रिय या अप्रिय करने से मनुष्य को जैसे हर्ष या शोक का अनुभव होता है, उसी प्रकार दूसरे के विषय में भी समझे। कोई दूसरे पर आक्रमण करता है, तो समय पाकर दूसरा उस पर आक्रमण करता है। इस तथ्य को अपने पर घटाये। अर्थात किसी पर आक्रमण न करे।

इसके बाद बृहस्पति स्वर्गलोक को चले गये (अध्याय   -   )।

मीमांसा

पौराणिक गाथाओं में स्वर्ग-नरक की कल्पनाएं हैं; परंतु न कहीं नरकलोक है और न स्वर्गलोक है। मन का उद्वेग नरक है और मन की शांति स्वर्ग है। बृहस्पति स्वर्ग से आकर युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर दिये और पुनः स्वर्ग चले गये, ऐसी असत्य एवं काल्पनिक बातों को लिखकर पंडित अपनी विषय-वस्तु की प्रामाणिकता सिद्ध करने का प्रयास करता है और भोलेभाले पाठकों को भ्रम में डालता है।

. मद्य, मांस तथा हिंसा का त्याग सच्ची मानवता है

एक सौ चौदह से एक सौ सोलह (-   )वें अध्यायों में मांस, मद्य तथा हिंसा का त्याग तथा अहिंसा एवं शुद्धाहार पर जोर दिया गया है। बताया गया कि ब्रह्मवादी मनीषियों ने मन, वाणी तथा कर्म से हिंसा न करना तथा मांस न खाना, चार प्रकार से अहिंसा व्रत पालन करने का निर्देश किया है। जैसे चार पैर के पशु तीन पैरों से नहीं खड़े रह सकते, वैसे केवल तीन ही विधा से

पालित अहिंसा पूर्ण नहीं हो सकती। जैसे "हाथी के पैर में सबका पैर" कहा जाता है वैसे अहिंसा में सभी धर्म समाहित हैं। मनुष्य मन से हिंसा का विचार करता है, फिर उसे वाणी और कर्म में लाता है। जब मनुष्य किसी को पीड़ा देने की बात नहीं सोचता, वाणी से किसी की हिंसा नहीं करता और क्रिया द्वारा किसी को दुख नहीं देता और मांस नहीं खाता, उसकी चतुर्विधि अहिंसा पूरी होती है।

मांस खाने की इच्छा, मांस खाने के लिए उपदेश देना तथा प्रत्यक्ष मांस खाना, हिंसा–दोष के तीन आधार हैं। इसलिए साधना में लगे हुए मनुष्य मांस नहीं खाते। नराधम जानते हैं कि पुत्र के मांस और अन्य मांस में अंतर नहीं है, वे अज्ञानवश मांस खाते हैं। अपना माना हुआ शरीर अंत में मिट्टी के भीतर सड़ेगा, या लकड़ी में जलेगा या जल–जंतुओं तथा गीध–चील का आहार होगा, ऐसे शरीर के लिए दूसरों को पीड़ा देकर गंदा मांस विवेकवान कैसे खा सकता है? उशीनर–शिवि आदि ने अपने शरीर का मांस देकर दूसरे के शरीर के मांस की रक्षा की थी। वे कैसे घृणित हैं जो अपने शरीर के मांस को बढ़ाने के लिए दूसरे के मांस को खाते हैं (अध्याय)।

जो मांस नहीं खाता, किसी की हिंसा नहीं करता और न दूसरे से हिंसा कराता है, वह सब प्राणियों का मित्र है। मद्य–मांस न पीने–खाने वाला मानो सदा यज्ञ करता है। सब जीवों को अभयदान देने वाला प्राणदाता है। जैसे हमें अपने प्राण प्रिय होते हैं, वैसे सबको अपने प्राण प्रिय होते हैं। सब प्राणियों को मृत्यु–भय होता है, जो दूसरों को मृत्यु देकर मांस खाता है, वह कितना नराधम है। अहिंसा परम धर्म, तप और सत्य है। मांस तृण, काठ या पत्थर से नहीं पैदा होता है। मांस के लिए किसी निरपराध प्राणी को दुख देना पड़ता है।

यदि मांस खाने वाले न रहें, तो पशुओं की हिंसा कोई नहीं करेगा। पशु–हत्यारा मनुष्य मांसाहारियों के लिए पशु–पक्षियों को मारता है। यदि लोग मांस खाना छोड़ दें, तो पशु–हत्या स्वतः बंद हो जाय। लोभ, मोह तथा कुसंग से मांसाहार की प्रवृत्ति होती है। मारने वाले, खरीदने वाले तथा मांस खाने वाले तीनों ही अपराधी हैं। मांस खाने वाले तथा पशु मारने वाले का अनुमोदन करना भी पाप है। वैदिक यज्ञ–याग के नाम पर भी जो पशु मारते और मांस खाते हैं, वे नरकगामी हैं। जो उपद्रव–रहित शांति चाहे वह जीव–हत्या और मांसाहार का पूर्ण त्याग रखे (अध्याय)।

दूसरे का मांस खाकर अपना मांस बढ़ाने की इच्छा रखने वाले निर्दय हैं। हर प्राणी को प्राण प्रिय है। अतएव किसी का प्राण लेना महा पाप है। प्राणियों

पर दया करना ही महान पुण्य है। प्राणदान महादान है। आत्मा से बढ़कर कोई वस्तु प्रियतम नहीं है। प्राण-संकट में सभी प्राणी कांप उठते हैं। इस संसार-सागर में सभी प्राणी गर्भवास, जन्म, बुढ़ापा आदि दुखों से पीड़ित होकर भटकते हैं और मृत्यु-भय से उद्विग्न हो जाते हैं। इस संसार में आत्मा के समान कुछ प्रियतम नहीं है, अतएव सभी प्राणियों पर दया करे और सबको अपना आत्मा समझे।

मारे जाने वाला प्राणी मानो कहता है– *"मां स भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्* (,)।–जो मुझे खाता है, उसे मैं भी खाऊंगा।" यही 'मांस' की परिभाषा है। वस्तुतः अहिंसा ही परम धर्म है, परम संयम है, परम दान है, परम तपस्या है, परम यज्ञ है, परम फल है, परम मित्र है और परम सुख है। हिंसा न करने वाला सभी प्राणियों की माता है और पिता है। अहिंसा का महत्त्व सर्वोपरि है (अध्याय)।

. देहासक्ति शूद्रत्व है तथा ब्रह्मलीनता ब्राह्मणत्व है

एक कीड़े तथा वेदव्यास की वार्ता तथा कथा आती है, वह इस प्रकार है– वेदव्यास कहीं जा रहे थे। रास्ते में गाड़ी की लीक में एक कीड़ा दौड़ा जा रहा था। वेदव्यास ने पूछा–तुम क्यों बड़ी तेजी से भागे जा रहे हो? कीड़े ने कहा–महाराज! पीछे से बैलगाड़ी आ रही है वह मुझे कुचल देगी। वेदव्यास ने कहा–तुम्हें अपने कीड़े के जीवन में क्या सुख मिल रहा है? इसमें रहने की अपेक्षा तो मर जाना अच्छा है। कीड़े ने कहा–मुझे अपनी खानि के अनुसार सुख मिलता है। मरना तो कोई नहीं चाहता। मैं पहले जन्म में धनी शूद्र था। मैं ब्राह्मणों का आदर नहीं करता था। मैं कंजूस, क्रूर तथा ब्याजखोर था। मैं कटुभाषी था, चतुरता से दूसरों को ठगता था, झूठ बोलकर दूसरों का धन हड़प लेता था। मैं महा निर्दय, लोभी, जीभचटोर तथा अत्याचारी था। वेदव्यास ने कहा–तुम जन्म लेने में प्रगति करो। मैं तुम्हारा उद्धार करूंगा।

वह कीड़ा मरकर शाही, गोधा, सुअर, मृग, पक्षी, चांडाल, शूद्र, वैश्य होते हुए क्षत्रिय राजा हुआ। वेदव्यास जी उससे मिले और कहा–कीटयोनि से उन्नति करते हुए जीव शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय होने के बाद ब्राह्मण होता है, तब वह *'ब्राह्मणत्वम् साधुवृत्तः'* सदाचारी होकर ब्रह्मभाव उपलब्ध करता है।

वह क्षत्रिय होने के बाद मरकर ब्राह्मण हुआ। फिर तो वह *'ब्रह्मणो ब्रह्मवित्तमः'* ब्रह्मज्ञानी होकर ब्रह्मलीन हो गया (अध्याय -)।

मीमांसा

कीड़े तथा मनुष्य से बात नहीं हो सकती। कथा काल्पनिक है। पुनर्जन्म तथ्य है, परंतु कहानी की कल्पना में एकांगीपन, पक्षपात तथा अज्ञान है। केवल ब्राह्मण को आदर न देना बुरा नहीं है, अपितु किसी को भी आदर न देना बुरा हैं। मनुष्य एक योनि है। शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण अलग-अलग योनि नहीं हैं। मनुष्य-शरीर प्राप्त हो जाना ही कल्याण के स्थान में आ जाना है। कल्याण के लिए तथाकथित ब्राह्मण कहलाना आवश्यक नहीं है, अपितु आत्मबोध तथा आत्मशोध की आवश्यकता है। सभी मनुष्य चाम का थैला तथा मल-मूत्र का पिंड शरीर लेकर घूमते हैं, इसलिए सब चमार और भंगी हैं, और सबके शरीर में ब्रह्म (आत्मा) बैठा है, इसलिए सब मनुष्य ब्राह्मण हैं। वस्तुतः देहासक्त मनुष्य चमार-भंगी है और आत्मलीन एवं ब्रह्मलीन मनुष्य ब्राह्मण है। अतएव मनुष्य सर्वोच्च है।

. गृहस्थधर्म और पातिव्रत्य

एक सौ बीस से एक सौ बाइस (-)वें अध्याय में व्यास-मैत्रेय-संवाद कराकर दान की प्रशंसा की गयी है, फिर तप की प्रशंसा करके गृहस्थ के लिए उत्तम कर्तव्य का निर्देश किया गया है। वह केवल एक श्लोक में है, परंतु पर्याप्त है। वह इस प्रकार है–"जिस कुल में पति अपनी पत्नी से तथा पत्नी अपने पति से संतुष्ट रहते हैं, वहां पूर्ण कल्याण विद्यमान रहता है।" यथा–

यो भर्ता वासितातुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता।
यस्मिन्नेवं कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते

(अनुशासन पर्व, अध्याय , श्लोक)

एक सौ तेईस ( )वें अध्याय में शांडिली ने सुमना को अपने आचरण के आधार पर पातिव्रत्य का उपदेश दिया है। शांडिली ने कहा–मैंने गेरुवे वस्त्र, वल्कल, मुंडन तथा जटा धारणकर देवत्व नहीं पाया है, अपितु पति को कभी कठोर वचन नहीं कहा। मैं सदैव सासु-ससुर की आज्ञा में रहती हूं। मैं चुगुली नहीं करती, घर-घर नहीं घूमती तथा देर तक किसी से बात नहीं करती। मैं गुप्त-प्रकट कभी अश्लील हंसी-विनोद नहीं करती। मैं अपनी किसी क्रिया द्वारा किसी का अहित नहीं करती। मैं सदैव पति का आदर करती हूं। मेरे पति को जिस खाद्य तथा पेय में अरुचि है, उसे मैंने भी त्याग दिया है।

मैं घर का सारा कार्य सबेरे से उठकर करती हूं। मैं बच्चों की सेवा करती, कन्याओं को नारी-धर्म की शिक्षा देती तथा हानिकारी भोजन नहीं करती। मैं बच्चों को कभी कटु नहीं कहती, उन्हें पीड़ा नहीं देती, अपितु उनसे मीठा बरताव करती हूं। मेरे घर में अन्न या कोई वस्तु बिखरी हुई पड़ी नहीं रहती। मैं घर में पाले गये पशुओं की सेवा करती हूं। मैं भिक्षुओं को भिक्षा देती हूं तथा अतिथि का सत्कार करती हूं। जब मेरे पति बाहर रहते हैं, तब मैं शृंगार नहीं करती। पति के सो जाने पर कोई काम आ जाय तो मैं उन्हें जगाये बिना उसे स्वयं कर लेती हूं। परिवार के पालन-पोषण के लिए मैं पति को परेशान न कर स्वयं काम कर लेती हूं। घर की गुप्त बातें किसी से प्रकट नहीं करती और घर-द्वार को सदा झाड़-बुहारकर साफ रखती हूं (अध्याय -)।

. हमारे दुखी रहने के अनेक कारण

एक सौ चौबीस ( )वें अध्याय के शुरू में चौबीस श्लोकों का प्रक्षेप है जिसमें क्रमांक नहीं है। उसका विषय है नारायण विष्णु में भक्ति होनी चाहिए। यदि विष्णु में भक्ति नहीं है तो कल्याण नहीं होगा। यह प्रसंग यहां रखना किसी विष्णु-भक्त पंडित की करतूति है।

इसके बाद अध्याय का मूलवचन युधिष्ठिर के इस प्रश्न से शुरू होता है कि साम और दान में श्रेष्ठ कौन है? भीष्म कहते हैं कि दोनों ही श्रेष्ठ हैं। जहां जिसका उपयोग उचित हो, वहां उसका प्रयोग करना चाहिए। फिर भीष्म साम की प्रशंसा में एक कहानी कहते हैं—

किसी जंगल में एक बुद्धिमान तथा वाणी-कुशल ब्राह्मण एक राक्षस के चंगुल में फंस गया। राक्षस उसे मारकर खाना चाहता था। ब्राह्मण घबराया नहीं। उसने बड़ी चतुरता से उससे मीठी बातें कीं। राक्षस प्रसन्न हुआ। यह ब्राह्मण की साम नीति का महत्त्व था। राक्षस ने कहा—यदि तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दे दो, तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगा। बताओ, मैं दुबला और सफेद क्यों होता जा रहा हूं। ब्राह्मण ने एकतीस श्लोकों में उसका कारण बताया है और हर श्लोक का चौथा पाद है 'तेनासि हरिण: कृश:'—अर्थात इससे तुम सफेद और दुर्बल होते जाते हो। उसे हम एक जगह समेटकर रखें तो इस प्रकार होगा—

अपने लोगों से अलग परदेश में रहने से, अपने लोगों को सम्मान देने पर भी उनके स्वभाव दोषों के कारण उनके द्वारा तिरस्कार पाने से, मूर्ख धनियों द्वारा तिरस्कृत होने से; तुम गुणवान, विद्वान तथा विनम्र होते हुए भी सम्मान

नहीं पाते और गुणहीन व्यक्तियों को सम्मानित होते हुए देखते हो। जीवन-निर्वाह के उपाय न होने से क्लेश उठाते हो, किंतु कहीं झुककर किसी की सहायता नहीं स्वीकारते हो। तुम अपनी सज्जनता के कारण जिसका उपकार करते हो, वह तुम्हें अपने सामने पराजित समझता है। तुम काम-क्रोध से पीड़ित व्यक्तियों की चिंता करते रहते हो। तुम सम्मान पाने योग्य हो, परंतु अज्ञानी मनुष्य तुम्हारा मजाक उड़ाते हैं। किसी ने अच्छा मुखौटा लगाकर तुम्हें ठग लिया। तुम व्यवहार-कुशल तथा गुणज्ञ हो, परंतु अच्छे लोग भी तुम्हारा आदर नहीं करते हैं। तुम हठधर्मियों के बीच में संशय-रहित उत्तम बात कहते हो, किंतु तुम्हारी बात का वहां आदर नहीं होता है।

तुम धन, बुद्धि और विद्या से हीन होकर भी केवल शारीरिक बल से ऊंचा पद पाना चाहते हो। तुम तपस्या में लीन हो, परंतु तुम्हारे बंधु-बांधव इसे पसंद नहीं करते हैं। तुम्हारा पुत्र अहंकारी तथा उद्दंड है और दामाद घर का सारा धन उड़ा ले जाने वाला है। तुम्हारे भाई बेईमान हैं या तुम्हारे प्रिय स्वजन मर गये हैं। तुमने किसी की हत्या की है या किसी का धन हड़प लिया है। तुम्हारी पत्नी का किसी ने अपहरण कर लिया है। तुम बूढ़े हो, और लोग तुम्हारा तिरस्कार करते हैं, या तुमसे द्वेष करते हैं। अज्ञान में तुम बढ़े-चढ़े हो। बुढ़ापे के लिए तुम्हारा संचित धन किसी ने हड़प लिया है। जीवन-निर्वाह के लिए दुर्जनों के सहयोग की अपेक्षा रखनी पड़ती है।

तुम्हारी पत्नी बहुत सुंदरी होने के कारण वह तुम्हें प्रिय हो, और तुम्हारे पड़ोस में कोई बहुत धनी तथा सुंदर और कामी मनुष्य निवास करता हो, और उससे तुम्हें सदा भय लगा रहता है। तुम धनवानों के बीच उत्तम बात करते हो, किंतु उन्हें वे पसंद नहीं आती हैं। तुम्हारा कोई प्रिय व्यक्ति तुम पर कुपित होकर विरुद्ध हो गया है, और उसको तुम अपने अनुकूल नहीं बना पाते हो। कोई चतुर व्यक्ति तुमसे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सदैव तुम्हें मूर्ख बनाना चाहता है। तुम अपने गुणों से सम्मानित हो, परंतु तुम्हारे पिता समझते हैं कि तुम उनके प्रभाव से सम्मान पा रहे हो। तुम लज्जावश अपने मन के भाव को नहीं प्रकट कर पाते हो, क्योंकि तुम्हें अपनी मनचाही वस्तु पाने में संदेह है। संसार में अनेक प्रकार की बुद्धि, रुचि और स्वभाव वाले मनुष्य हैं, तुम उन्हें अपने वश में करना चाहते हो।

तुम विद्वान न होकर भी विद्या वाला यश पाना चाहते हो। डरपोक और कायर होकर भी वीरता और पराक्रमजनित सुयश पाना चाहते हो। अल्प धन होने पर भी दानवीर होने का सुयश चाहते हो। तुमने कुछ काम किया। बहुत

समय उसका फल पाने की लालसा थी, परंतु उसे कोई दूसरा मार ले गया। तुम्हें अपना कोई दोष कभी दिखायी नहीं देता, परंतु दूसरे लोग बिना कारण तुम्हारी बुराई करते हैं। तुम विरक्त साधुओं को गृहस्थ और भिखमंगे तथा संन्यासियों को मठ-मंदिर में आसक्त समझते हो। तुम अपने रोगी स्वजनों की ठीक से चिकित्सा कराकर उन्हें रोग-मुक्त नहीं करा पाते हो। तुम अपने को अर्थहीन पाते हो। तुम्हारी बातें धर्म, अर्थ तथा काम के अनुकूल तथा उचित होती हैं, किंतु उन पर लोग विश्वास नहीं करते। तुम मनीषी होकर भी अपने निर्वाह के लिए मूर्खों पर निर्भर हो। तुम पापियों को लौकिक लाभ में उन्नत तथा पुण्यात्माओं को दुख उठाते देखकर इस परिस्थिति की निंदा में लगे रहते हो। तुम्हारे साथी परस्पर विरोधी हैं, तुम उन्हें समझा-बुझाकर उनका प्रिय करना चाहते हो। वेदज्ञ ब्राह्मणों को वेद-विरुद्ध काम में लगे हुए तथा विद्वानों को इंद्रिय-लंपट देखकर तुम सदैव चिंता में पड़े हो।

ब्राह्मण ने कहा—इन्हीं सब कारणों में से तुम कुछ कारणों को लेकर दुखी होकर दुबले तथा सफेद होते जा रहे हो। ऐसा कहकर ब्राह्मण ने राक्षस का आदर किया, अतएव राक्षस ने भी ब्राह्मण का सत्कार किया। उसने ब्राह्मण को अपना मित्र बना लिया और धन देकर विदा किया (अध्याय)।

मीमांसा

किसी बुद्धिमान पंडित ने दुखी होने के कारणों का यहां अच्छा संग्रह किया है; और यह सब हमारे ऊपर व्यंग्य है। हम किसी कारण भी दुखी न हों। हम अपने को सुलझाकर रखें और दूसरों को सुलझने की राय दें।

. एक सौ पचीसवें से एक सौ इकसठवें अध्यायों की विषय-सूची

एक सौ पचीस ( )वें अध्याय में मृत पितरों के उपलक्ष्य में श्राद्ध का वर्णन है। एक सौ छब्बीस ( )वां अध्याय भी कर्मकांडात्मक है। इसी प्रकार की बातें एक सौ सत्ताइस से लेकर एक सौ उन्तालीस (-) अध्याय तक कही गयी हैं। एक सौ चालीस ( )वें अध्याय में शिव जी की महिमा बताना शुरू किया गया है, जिसमें अनेक अध्याय चले हैं, उसमें नाना कर्मकांडात्मक बातें कही गयी हैं। चारों वर्णों तथा आश्रमों की वही घिसी-पिटी बातें दोहरायी गयी हैं। एक सौ पैंतालीस ( )वें अध्याय में स्वर्ग-नरक आदि

की बातें बतायी गयी हैं। इस अध्याय में मूल श्लोक चौसठ ( ) हैं और प्रक्षेप लगभग तेरह सौ ( ) से अधिक हैं। उमा तथा महेश्वर से कर्मकांड की बात या अन्य बातें जो कई बार कही गयी हैं, वे ही सब हैं।

एक सौ छियालीस ( )वें अध्याय में पार्वती के द्वारा स्त्री–धर्म का वर्णन है। यह विषय वन पर्व में विस्तार से आया है तथा इसी पर्व में पीछे पचीसवें संदर्भ में कुछ इसका वर्णन है। एक सौ सैंतालीस–अड़तालीस (–)वें अध्याय में श्रीकृष्ण की महिमा बतायी गयी है। इस अध्याय में भीष्म ने युधिष्ठिर को राज्य करने के लिए आदेश दिया है। एक सौ उनचास ( )वें अध्याय में विष्णु सहस्रनाम का उल्लेख है। एक सौ पचास ( )वें अध्याय में मंत्रजप, संकीर्तन, देवता, ऋषियों तथा राजाओं के नाम आदि दिये गये हैं। एक सौ इक्यावन ( )वें अध्याय में ब्राह्मणों की महिमा बतायी गयी है। एक सौ बावन ( )वें अध्याय में दत्तात्रेय जी कार्तवीर्य अर्जुन को वरदान देते हैं। ब्राह्मण की महिमा भी चलती है। एक सौ तिरपन ( )वें अध्याय में भी ब्राह्मण–महिमा है। फिर एक सौ चौवन से छप्पन (–)वें अध्याय तक उतथ्य ब्राह्मण, अगस्त्य, वसिष्ठ, अत्रि तथा च्यवन के महत्त्व को बताया गया है। एक सौ सत्तावन ( )वें अध्याय में भी ब्राह्मण–महिमा है। एक सौ अट्ठावन ( )वें अध्याय में भीष्म श्रीकृष्ण की महिमा बताते हैं। एक सौ उनसठ ( )वें अध्याय में श्रीकृष्ण ब्राह्मण की महिमा बताते हैं। एक सौ साठ ( )वें अध्याय में श्रीकृष्ण शंकर जी की महिमा बताते हैं। यही विषय एक सौ इकसठ ( )वें अध्याय में भी चलता है (अध्याय –)।

. भीष्म का निधन तथा अंत्येष्टि–संस्कार

एक सौ बासठ ( )वें अध्याय में बताया गया है कि धर्म के विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण श्रेष्ठ है या शास्त्र प्रमाण? उत्तर है कि ये दोनों प्रमाण सत्य को सिद्ध करने में अपनी सीमा रखते हैं। सत्य ही धर्म है और उसके लिए आवश्यक है आलस्य छोड़कर योगाभ्यास करना। मन के अंतर्मुख होने पर सच्चे धर्म एवं सत्य का साक्षात्कार होता है। मन अंतर्मुख तब होता है जब वह पवित्र हो। इसके लिए सदाचार की आवश्यकता है। केवल तर्क से यह स्थिति नहीं मिलती है; अपितु विवाद छोड़कर शुद्ध अंत:करण द्वारा अंतर्मुख होने की आवश्यकता है।

इसके लिए सदाचार की आवश्यकता है। उद्दंड तथा अभिमानी न हो। बड़ों का आदर करे और सबसे समता तथा प्रेम का बरताव करे। अतिथि–सेवा करे।

गुरु ने जिस काम की आज्ञा दी हो, उसे पूरा करके उन्हें बता दे। प्रातः-सायं केवल दो बार भोजन करे। बीच में कुछ न खाय। अपने दोष को गुरुजनों के पास न छिपाये। गुरुजनों के पास अपना दोष प्रकट कर देने पर वह मिट जाता है और उसे छिपाने पर बढ़ता है।

"सर्वोत्तम तीर्थ गुरु हैं, सर्वोत्तम पवित्र हृदय है, सर्वोत्तम दर्शन आत्मज्ञान है और सर्वोत्तम सुख संतोष है।"

एक सौ तिरसठ ( )वें अध्याय में युधिष्ठिर विद्या, बल और बुद्धि से श्रेष्ठ भाग्य मानते हैं। भीष्म अपने उत्तर में कहते हैं कि मनुष्य को जो कुछ मिलता है वह उसके अपने कर्मों का फल होता है। इसलिए भाग्य के भरोसे न बैठकर प्रयत्नवान होना चाहिए। एक सौ चौसठ ( )वें अध्याय में भी साधना पर जोर दिया गया है।

एक सौ पैसठ ( )वें अध्याय में देवता, नदी, पर्वत, ऋषि और राजाओं के नाम-कीर्तन का माहात्म्य बताया गया है।

एक सौ छाछठ ( )वें अध्याय में बात आती है कि भीष्म जी युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देकर चुप हो गये। दो घड़ी तक सब वातावरण शांत रहा। फिर वेदव्यास ने भीष्म से कहा—अब आप युधिष्ठिर को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दें।

भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर! तुम सारी चिंता छोड़कर हस्तिनापुर जाओ और प्रजा का पालन करो। सूर्य के उत्तरायण होने के समय तुम मेरे पास आ जाना।

युधिष्ठिर भीष्म को प्रणाम कर हस्तिनापुर चल दिये। हस्तिनापुर जाकर साथ के लोगों को अपने-अपने घर जाने की आज्ञा दी। उसके बाद जिन स्त्रियों के पति-पुत्र आदि युद्ध में मारे गये थे उन सबको धन देकर उन्हें धैर्य बंधाया। इसके बाद जब युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो गया तब उन्होंने योग्य लोगों को मंत्री पद देकर उन्हें राजकाज चलाने का भार सौंपा।

जब सूर्य के उत्तरायण का समय आया तब अंत्येष्टि-संस्कार की सामग्री लेकर राजा युधिष्ठिर दलबल के सहित भीष्म के पास गये। उस समय धृतराष्ट्र, गांधारी, कुंती, श्रीकृष्ण, विदुर, युयुत्सु, सात्यकि, अन्य पांडव आदि सब उपस्थित थे। भीष्म के पास वेदव्यास, नारद, असित देवल आदि ऋषि बैठे थे। भीष्म ने आंखें खोलकर सबको देखा। इसके बाद उन्होंने युधिष्ठिर का हाथ

. तीर्थानां गुरवस्तीर्थं चोक्षाणां हृदयं शुचि।
दर्शनानां परं ज्ञानं संतोषः परमं सुखम् ,

पकड़कर कहा–अब सूर्य उत्तरायण में आ गया है। मेरे बाणशय्या पर सोये अट्ठावन (   ) दिन बीते हैं, लेकिन ये दिन मेरे लिए सौ वर्षों के समान बीते हैं। यह माघ महीना का शुक्ल पक्ष चल रहा है।

भीष्म ने धृतराष्ट्र को पुकारकर कहा–राजन! तुम सब कुछ जानते हो। शोक नहीं करना। जो कुछ हुआ है यह होना था। पांडव तुम्हारे पुत्र हैं। युधिष्ठिर शुद्ध हृदय हैं। ये तुम्हारी आज्ञा में रहेंगे। इसके बाद लेखक ने भीष्म के मुंह से श्रीकृष्ण का परमात्मा के रूप में वर्णन करवाया है। लेखक श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म को महाप्रस्थान के लिए आज्ञा दिलवाता है। पश्चात भीष्म पांडव तथा धृतराष्ट्र को सत्य में दृढ़ रहने की सीख देते हैं (अध्याय   )।

एक सौ अड़सठ (   )वें अध्याय में भीष्म प्राण त्याग देते हैं। उनका अंत्येष्टि-संस्कार हुआ। सब लोगों ने गंगा नदी में स्नान कर जलांजलि दी। इसके बाद नदी से गंगाजी निकलकर पुत्र-शोक में विलाप करने लगीं। श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाकर धीरज बंधाया। फिर गंगाजी शोक त्यागकर नदी में उतर गयीं (अध्याय   -   )।

मीमांसा

भीष्म गंगा-नदी से नहीं, मनुष्य नर-नारी के संयोग से नारी से पैदा हुए थे, किंतु पौराणिक गाथाएं अलौकिकता का प्रपंच फैलाती हैं, जिससे मनुष्य केवल दिग्भ्रमित होता है। सूर्य के उत्तरायण होने पर मरने से कल्याण नहीं होता है, अपितु आत्मज्ञान के परिपक्व होने पर कल्याण होता है। अतएव आत्मस्थिति की परिपक्वता ही उत्तरायण है।

सद्‌गुरु कबीर ने कहा है–आत्मज्ञान की आग हृदय-सागर में लगी और कामादि मनोविकार रूपी कीचड़ जलकर राख हो गये और जीव का मोक्ष हो गया; परंतु उत्तरायण में शरीर छोड़कर मरने के भ्रम में पड़कर पंडित पोथी ही विचारता रह गया–

लागी आग समुद्र में, कांदौ जरि भई छार।
उत्तर दिश का पंडिता, रहा विचार-विचार